# क्या हम अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग हैं?

डॉ. चंचलमल चोरडिया

## सत्संगत से सुख मिलता है

सत्संगत से सुख मिलता है, जीवन का कण-कण खिलता है।। टेर।।

सत्संगत से सद्ज्ञान मिले, सत्संगत से भगवान् मिले।
पानी से पौधा फलता है, सत्संगत से सुख मिलता है।। 1।।

सत्संगत से वैराग्य बढ़े, सत्संगत से सौभाग्य बढ़े।
दीपक से दीपक जलता है, सत्संगत से सुख मिलता है।। 2।।

नास्तिक भी आस्तिक बन जाता, पापी भी पावन हो जाता।
चाबी से ताला खुलता है, सत्संगत से सुख मिलता है।। 3।।

कपड़े को जैसा रंग मिले, मानव को जैसा संग मिले।
बसी उसी ढाल में ढ़लता है, सत्संगत से सुख मिलता है।। 4।।

लाखों का भाग्य जगाया है, लाखों को पार लगाया है।
सत्संग से सिद्धि मिलती है, सत्संगत से सुख मिलता है।। 5।।

प्रकाशक

**कल्याणमल चंचलमल चोरडिया ट्रस्ट, जोधपुर**

चोरडिया भवन, जालोरी गेट के बाहर, जोधपुर-342003 ( राज. )

फोन: 0291-2621454 ( R ), फैक्स: 2435471, मोबाइल: 94141-34606

E-mail: cmchordia.jodhpur@gmail.com, Website: www.chordiahealth.com

सहयोग राशि 20/-

# ऐसा अपना घर हो.....।

गुण सौरभ से रहे महकता, जहाँ जीवन सुखकर हो।
ऐसा अपना घर.....।
कथनी करनी रहे एकसी, नहीं जिसमें अन्तर हो।।1।।
ऐसा अपना घर.....।

विनय, विवेक की नींव हो जिसमें, प्रेम प्यार की छत हो,
रहे मधुर व्यवहार सभी से, वचनों में अमृत हो।
सहनशीलता का हो आंगन, कटुता का न जहर हो।।2।।
ऐसा अपना घर.....।

उस घर में मजबूत बने, विश्वास की सब दीवारें,
कठिन घड़ी में बन जायें, सब एक दूजे के सहारे।
खिड़की हो अनुशासन की तो, विघटन का न असर हो।।3।।
ऐसा अपना घर.....।

मर्यादा की चार दिवारी में, सब मर्यादित हों,
सादा जीवन उच्च विचारों से, सब ही प्रमुदित हों।
बड़े जनों का हो आदर और छोटों पर भी महर हों।।4।।
ऐसा अपना घर.....।

सेवा और सहयोग का जिसमें, हो दरवाजा सुन्दर,
चित्र नहीं चारित्र की पूजा, हो जिस घर के अन्दर।
धर्म के सन्मुख रहें सदा सब, पापों से जहां डर हो।।5।।
ऐसा अपना घर.....।

स्वच्छ आचरण की हो बहारें, ज्ञान प्रकाश हो पूरा,
मोक्ष लक्ष्य की सीढ़ी हो तो, काम रहे न अधूरा।
'गौतम' से प्रभु फरमाते हैं, अब तो शाश्वत घर हो।।6।।
ऐसा अपना घर.....।

# क्या हम अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग हैं?

आज चारों तरफ तनाव, असन्तोष एवं अशान्ति का वातावरण है। चाहे गृहस्थ हो अथवा साधक, नौकर हो अथवा मालिक, कर्मचारी हो अथवा पदाधिकारी, जनता हो अथवा नेता, परिवार हो अथवा समाज, सामाजिक संस्थाएँ हो अथवा संगठन। हमारी दूसरों से अपेक्षाएँ बढ़ती जा रही हैं, परन्तु हम अपने कर्तव्यों एवं दायित्वों के प्रति उदासीन होते जा रहे हैं। अधिकार सभी चाहते हैं, परन्तु उसके लिए सेवा, त्याग, तपस्या, समर्पण, निष्ठा व विश्वसनीयता का आचरण करना आवश्यक नहीं समझते। हम बिना परिश्रम कियें अथवा बहुत कम मेहनत करके सब कुछ अथवा अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना चाहते हैं, भले ही उसके लिए हमें प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रुप से अकरणीय अथवा नियम विरुद्ध गलत आचरण ही क्यों न करना पड़ें।

प्रायः सभी परिवारों में अभिभावक, सम्प्रदायों में आचार्य, राष्ट्र में नेता, कार्यालयों में पदाधिकारी, अनुशासन चाहते हैं, परन्तु उनमें से अधिकांश स्वयं निष्ठापूर्वक बिना पक्षपात सबके साथ सद्भाव से अपने कर्तव्यों का निर्वाह नहीं करते। आदेशों का पालन सभी चाहते हैं, परन्तु अपने आश्रितों का हृदय कैसे जीता जावें, उनकी कठिनाईयों दुःखों अथवा अशांति का निवारण कैसे किया जाये, इसके प्रति सजगता नहीं दिखाते। सास अपनी बहू से अपेक्षाएँ तो बहुत करती है, परन्तु उसको बेटी के समान स्नेह देना आवश्यक नहीं समझती। मालिक नौकर से अधिकाधिक कार्य तो लेना चाहते हैं, परन्तु उसकी निम्नतम आवश्यकताओं का ख्याल भी नहीं करते। गुरु शिष्य से सेवा व आज्ञा पालन की तो आशा करते हैं, परन्तु शिष्य को अपने लक्ष्य में बढ़ाने हेतु वांछित सहयोग नहीं करते, शिष्य की मनःस्थिति एवं क्रिया कलापों का सजगतापूर्वक ध्यान नहीं रखते, जिससे शिष्य साधना के पावन पथ से भटक जाता है। नेता अपने सुख और स्वार्थ का ही ध्यान रखें, प्राप्त अधिकारों का दुरुपयोग करें, परन्तु प्रजा की समस्याओं के प्रति उपेक्षा रखें तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि वे भी अपने कर्तव्यों का ईमानदारी पूर्वक पालन नहीं कर रहे हैं। इसी कारण आज अधिकांश पिता पुत्र से, गुरु शिष्य से, सास बहु से, अध्यापक विद्यार्थी से, मालिक नौकर से, पदाधिकारी कर्मचारी से, बहु सास से, शिष्य गुरु से, नौकर मालिक से प्रसन्न नहीं हैं, वे एक दूसरे पर आरोप लगा उसकी अभिव्यक्ति करते हैं। आपसी भेदभाव एवं विश्वास कम होता जा रहा है। बड़ों के प्रति श्रद्धा और आदर की भावना लुप्त होती जा रही है।

अपने से बड़ों ( पूज्यों ) की आज्ञा का पालन करना, सेवा सुश्रुषा करना, उनके अनुभवों का लाभ उठाने हेतु मार्ग दर्शन लेना, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं स्वाभिमान में बाधक समझा जा रहा है। भारतीय संस्कृति की पावन परम्परा में माता-पिता एवं गुरु को देवता माना गया है किन्तु इसके गूढ़

रहस्य को हम नहीं समझ पा रहे हैं। जो हम अपने प्रति चाहते हैं वैसा ही आचरण दूसरों के प्रति करना चाहिये। पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव हमारे मन-मस्तिष्क पर हावी होता जा रहा है। हमारी मान्यताएँ बदल रही हैं, चिंतन में आध्यात्मिकता गौण होती जा रही हैं एवं स्वछन्द मनोवृत्ति बढ़ रही है। पारिवारिक एवं सामाजिक बन्धन समयानुकूल भी नहीं लग रहे हैं। अपनी क्षणिक उपलब्धियों के फलस्वरूप लोक मर्यादाओं के विरुद्ध कार्य करते हुए तनिक भी संकोच नहीं हो रहा है। करणीय एवं अकरणीय के भेद का बोध समाप्त होता जा रहा है। व्यक्ति को जो अनुकूल एवं प्रिय लगता है वह उसी को करना चाहता है। यदि उसको ऐसा करने से रोका जाता है तो परिवारों में, समाज एवं सम्प्रदायों में शांति भंग होते देर नहीं लगती। विभिन्न परिस्थितियों में हमारे कर्त्तव्यों की प्राथमिकताएँ क्या हैं- उसका सही चिन्तन नहीं हो पा रहा है, तब सारी जिम्मेदारियों को निभाने का तो प्रश्न ही कहाँ?

राष्ट्र के एक नागरिक अथवा नेता के रुप में, सामाजिक सदस्य अथवा संचालक के रुप में, परिवार में अभिभावक अथवा सदस्य के रुप में, पाठशाला में अध्यापक अथवा विद्यार्थी के रुप में, साधना के क्षेत्र में साधक अथवा श्रावक के रुप में, कार्यालय में पदाधिकारी अथवा कर्मचारी के रुप में हमारे क्या कर्तव्य हैं और उनका हम कितनी निष्ठापूर्वक प्राथमिकताओं के आधार पर पालन करते हैं; चिन्तन का विषय है? किसको कब और कितना महत्त्व देना स्व-विवेक पर निर्भर करता है? हमारा दृष्टिकोण व्यापक हों, हम समाज के लिए हितकारी बनें एवं सभी का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करें यही सफलता का मूलमंत्र हैं। अभिभावक का कर्तव्य है कि परिवार का सुव्यवस्थित रुप से लालन-पालन करने के साथ सभी सदस्यों में आपसी सद्भाव एवं प्रेम बनाये रखना, बच्चों को स्वावलम्बी एवं सुसंस्कारित बनाना तथा उन्हें व्यसनों से मुक्त रखना। इसके लिए आवश्यक है कि अभिभावक बच्चों को सद्पुरुषों के सम्पर्क में लाते रहे, सत् साहित्य पढ़ने, स्वाध्याय करने, व्रत-नियम लेने की निरन्तर प्रेरणा देते रहें। बच्चों की गतिविधियों एवं संगति पर ध्यान रखें। जो अभिभावक बच्चों को अत्यधिक लाड प्यार देते हैं एवं अन्य बातों की उपेक्षा करते हैं या ध्यान ही नहीं देते हैं तो उनके बच्चों में मानवीय गुणों का विकास कैसे सम्भव हो सकता हैं। ऐसे अभिभावक भविष्य में बच्चों के आचरण एवं व्यवहार के कारण तनावग्रस्त रहें तो आश्चर्य नहीं। बच्चों के विकास में बड़ों के प्रति आदर के साथ भय भी आवश्यक है। गलत कार्य करने पर अभिभावक को अनुशासनात्मक कार्य हेतु दण्ड भी देना पड़े तो तनिक भी नहीं हिचकिचाना चाहिए। भले ही ऐसा आचरण वर्तमान प्रचलित धारणाओं के प्रतिकूल हो। परिवारों में स्थायी एवं मधुर सम्बन्ध बनाये रखने के लिए अभिभावकों का विवेक, अनुशासन व पक्षपात रहित निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्यों का पालन सबसे महत्वपूर्ण होता है।

आज कर्तव्यों की उपेक्षा के कारण कहीं-कहीं पर दाम्पत्य जीवन में दरारें भी पड़ जाती हैं। यदि पति पत्नी को सद्प्रवृतियों में न जोड़े तो वे पति अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीन ही कहे जावेंगे। पत्नी का भी कर्तव्य है कि वह ससुराल पक्ष के सभी सदस्यों को यथोचित सम्मान दें। बड़ों की सेवा सुश्रूषा करें। उनके प्रति विनय का व्यवहार कर उनके मार्ग दर्शन एवं अनुभवों का लाभ उठावें। छोटी-छोटी बातों को महत्त्व नहीं देवें। क्रोध एवं जिद्दी प्रवृति हो तो उसको धीरे-धीरे सहनशीलता एवं सहिष्णुता पूर्वक त्यागने का प्रयास करें। पति सन्मार्ग से न भटक जावें एतदर्थ पति के कार्यकलापों के प्रति सजगता रखना भी पत्नी का दायित्व होता है। उसे चिन्तन करना चाहिये कि अधिकार मांगने से नहीं मिलते, वे निष्ठा, विश्वसनीयता एवं समर्पण से स्वतः मिल जाते हैं। सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए दोनों के द्वारा अपने कर्तव्यों का विवेकपूर्ण पालन आवश्यक होता हैं।

परिवार में पति-पत्नी के अन्य सदस्यों के प्रति भी कर्तव्य होते हैं। घर में आने वाले अतिथियों के प्रति भी विवेकपूर्ण आचरण आवश्यक होता है। आज विवेक के अभाव में दायित्वों की प्राथमिकताएँ निश्चित नहीं हो पा रही हैं। किसको कब, कहाँ कितना महत्व देने का है, इस दिशा में विवेक व चिन्तन समाप्त होता जा रहा है। पति-पत्नी एक दूसरे से इतने अधिक आसक्त होते हैं कि परिवार के अन्य सदस्य उन्हें अपने सुख में बाधक लगते हैं एवं कोई न कोई बहाना ढूँढ कर अपने को अलग रहने का मार्ग प्रशस्त कर लेते हैं। वे भूल जाते हैं कि माता-पिता की भी उनसे अपेक्षाएँ हैं, उनको सुख पहुँचाना, उनकी सेवा करना, उनके अच्छे कार्यों में सहयोग देना भी उनका परम कर्तव्य है। अधिकांश बच्चे अपने माता-पिता से दूर होते जा रहे हैं। उनकी सेवा हेतु नौकरों की व्यवस्था कर अपने कर्त्तव्यों की इति श्री समझ रहे हैं। क्या वे पत्नी से प्यार करने हेतु भी नौकरों पर निर्भर रहना उचित समझते हैं? उन्हें अपने वृद्ध माता-पिता से भी कभी-कभी पूछना चाहिए कि हमारे से आपकी क्या अपेक्षाएँ हैं। मेरे जन्म के समय आपके मन में जो अरमान थे, उन सभी को पूरा करने में मैं कितना खरा उतरा हूँ।

थोड़ा सा पद, पैसा एवं योग्यता के अनुरूप कीर्ति मिलने के पश्चात् तो उनके अहम् का पार नहीं रहता। लोक मर्यादाएँ एवं सामाजिक बन्धनों की उपेक्षा करते तनिक भी संकोच नहीं होता। वे बड़ों के अनुभवों एवं मार्ग दर्शन की आवश्यकता अनुभव नहीं करते। बड़ों का मन जीत कर आशीर्वाद प्राप्त करने को वे महत्त्व नहीं देते। अपने आपको आवश्यकता से अधिक बुद्धिमान समझकर विवेकहीन आचरण करने लगते हैं। पद एवं पैसे के अहंवश प्रेम व आत्मीयता गौण होती जा रही है। वाणी में अविवेक, असंयम और अहंकार झलकने के कारण वे अपने परिजनों, पड़ौसियों से भी दूर होते जा रहे हैं। अपने परिवार में प्रायः माता-पिता को स्थान नहीं देते।

अपने बच्चों तक परिवार सिमटते जा रहे हैं। सामाजिक व्यवहार उन्हें भार स्वरूप लग रहे हैं। सामाजिक भय समाप्त होता जा रहा है। परिवार के सदस्यों में आपसी सद्भाव, प्रेम, सहिष्णुता,

मधुरता प्रायः लुप्त होती जा रही हैं। आध्यात्मिक विकास हेतु तड़फ का ह्रास एवं आचरण में विवेक समाप्त हो रहा है। अपने स्वाभिमान की रक्षा के नाम पर परिवार में विघटन को प्रोत्साहित करने वालों को चिन्तन करना होगा कि ''स्वाभिमान'' क्या हैं? गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, सास-बहु, अध्यापक-विद्यार्थी जैसे पुनीत रिश्तों में किसका स्वाभिमान महत्वपूर्ण होता है तथा किसको प्राथमिकता दी जावें, चिन्तन का विषय है? यदि बड़ों के आदेशों, निर्देशों से, विनय, सेवावृत्ति एवं मानवीयता के आचरण में स्वाभिमान को चोट पहुँचती है तो वह स्वाभिमान नहीं, अपितु व्यक्ति का अहम् ही होता है। अहम् कैसा भी हों, किसी में भी हों, कहीं भी हों, व्यक्ति की प्रगति अवरुद्ध कर देता हैं। सरलता के अभाव से अन्य सभी गुण प्रभावहीन हो जाते है। मधुरवाणी में संवाद, दूसरों के साथ आत्मीयता का व्यवहार, जीवन में लक्ष्य प्राप्ति की प्राथमिक आवश्यकता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से अहं अर्थात् अकड़ वालों के वृद्धावस्था के लक्षण जल्दी प्रकट होते है। दांत एवं हड्डियाँ अपेक्षाकृत समय से पूर्व ही कमजोर हो जाती है। घर, परिवार एवं समाज में हमारा आचरण खरबूजे की भांति होना चाहिए न कि नारंगी जैसा। मोबाइल एवं संचार माध्यमों के अधिक सम्पर्क में रहने के कारण आज बच्चों पर हमारा नियन्त्रण प्रायः नहीं होता, न उनको गलत आचरण करते हुए भय लगता है। साथ ही साथ उनके आँख में शर्म भी दूर होती जा रही है। फलतः अच्छी पारिवारिक मर्यादा एवं संस्कार कम होते जा रहे हैं। आज का मानव बुद्धि के अभाव से नहीं, अपितु उसका सदुपयोग न करने से समस्याग्रस्त है, दुःखी है। अतः हमें न केवल कर्तव्यों का ही पालन करना हैं, अपितु प्राथमिकताओं के आधार पर विवेकपूर्ण सन्तुलन भी बनाये रखना आवश्यक होता है।

बड़ों का बड़प्पन, व्यापक दृष्टिकोण, चिन्तन, भेदभाव रहित बर्ताव, सद्भावपूर्ण नियन्त्रण, विवेकपूर्ण आदेश, व्यक्तिगत त्याग तथा अनुजों का बड़ों के प्रति आदरभाव, विनय, अनुशासन, आज्ञापालन व सहयोग ही परिवार, समाज, धर्म व राष्ट्र के बहुमुखी विकास का प्रतीक होता हैं। चाहे परिवार का मुखिया हों, समाज का संचालक हों, धर्माचार्य हों अथवा राष्ट्रीय नेता, सब पर कर्तव्यों का पालन करने एवं करवाने की गुरुतर जिम्मेदारी हैं। पहले स्वयं अपने कर्तव्यों का निर्वाह करना होगा। तब ही दूसरों को सुधारने व कर्तव्य निर्वाह की प्रेरणा देने के हम हकदार होंगे। जहाँ-जहाँ कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन होता है, वे परिवार, समाज, धार्मिक संगठन तथा राष्ट्र, शान्त, सुखी, तनाव रहित होकर समृद्ध एवं शक्तिशाली बनते हैं, विकास करते हैं, अपने उद्देश्यों को सरलता से प्राप्त कर सकते हैं। इसके विपरीत जितनी-जितनी कर्तव्यों की उपेक्षा होगी, उतनी अशान्ति, असन्तोष विघटन व तनाव बढ़ेगा एवं प्रगति अवरुद्ध हो जावेगी।

समयानुकूल प्राथमिकताओं के आधार पर बहुपक्षीय चिन्तन द्वारा विवेकपूर्ण निर्णय ही ऐसी परिस्थितियों में परिवार, समाज, सम्प्रदाय एवं राष्ट्र को एक सूत्र में बांधे रख सकता है। एक पक्षीय दृष्टिकोण से समस्याओं का सम्यक् समाधान नहीं हो सकता, फलतः अन्त में वह विघटन को

प्रोत्साहित करता है। अत: प्रत्येक व्यक्ति को हर स्तर एवं क्षेत्र में अपेक्षित दायित्वों का निर्वाह प्राथमिकता के आधार पर व्यापक दृष्टिकोण के साथ विवेकपूर्ण करना चाहिये।

प्राय: अधिकांश संस्थाओं में व्यापकता के नाम पर सदस्यों का चयन करते समय आचार संहिता स्पष्ट न होने से विवादास्पद, अविवेक पूर्ण आचरण करने वाले संस्था से जुड़ जावें तो आश्चर्य नहीं? ऐसी संस्थाओं के उद्देश्य चाहें जितने आदर्शवादी एवं उत्कृष्ट हों, नारे चाहें जितने लुभावने क्यों न हों, कार्यक्रमों का विज्ञापन प्रचार-प्रसार धुंआधार क्यों न हों, कठोर अनुशासन के अभाव में किसी सदस्य द्वारा सार्वजनिक रूप से उद्देश्य के विपरीत आचरण हुआ तो संस्था की छवि धूमिल होते देर नहीं लगेगी ?सदस्यों का सद्आचरण ही संस्था की छवि का द्योतक होता है। चिन्तन के अभाव में ऐसी संस्थाओं में यदि कोई कार्यक्रम उद्देश्यों के विपरीत हों तो भी आश्चर्य नहीं? उद्देश्यों के विपरीत सदस्यों की आचार संहिता की उपेक्षा करने वाली संस्थाओं को भी कर्तव्यों के प्रति कैसे सजग कहा जावे?

## क्या हम स्वयं के प्रति ईमानदार हैं?

### स्वयं की समीक्षा आवश्यक

जैन शास्त्रों में वर्णित बालक अतिमुक्त कुमार के वे उद्गार ''जिसको मैं जानता हूँ, उसको नहीं जानता एवं जिसको नहीं जानता उसको जानता हूँ।'' आज भी उतने ही शाश्वत हैं, भूतकाल में थे एवं भविष्य में रहेंगे, तथा हमको स्वयं के प्रति ईमानदार बनने की युगों-युगों तक प्रेरणा देते रहेंगे। क्या हम नहीं जानते कि जो जन्म लेता है, वह एक दिन मृत्यु को प्राप्त होता है। परन्तु हम नहीं जानते कि हमारी मृत्यु कब, कहाँ और कैसे होगीं? इसी प्रकार हम मानते हैं कि अच्छे कर्मों का फल अच्छा तथा बुरे कर्मों का फल बुरा मिलता है, फिर भी आज हमारा आचरण कैसा है? कहीं हमने अपने आपको अमर मानने की भूल तो नहीं कर ली है? क्या हम कभी अपनी मृत्यु का चिंतन करते हैं? क्या हमने कभी अपने जन्म अथवा मृत्यु के बाद की अवस्था का विचार किया है? अमूल्य हीरों से अल्प मूल्य की वस्तु को खरीदने वालों को हम पागल अथवा मूर्ख कहते हैं। परन्तु क्या हम अमूल्य मानव जीवन को क्षणिक भौतिक सुविधाएँ जुटाने में व्यर्थ गवां, वैसी मूर्खता तो नहीं कर रहे हैं? मानव जीवन की सार्थकता तो भक्त से भगवान, नर से नारायण, अथवा आत्मा से परमात्मा बनाने में हैं। आज प्रत्येक मानव को भले ही वह गृहस्थ हो या साधक, लेखक हो या पाठक, वक्ता हो या श्रोता, गुरु हो या शिष्य, शिक्षक हो या विद्यार्थी, वृद्ध हो या बालक, राजा हो या प्रजा, अमीर हो या गरीब, सेठ हो या नौकर, पुरुष हो या नारी, अपने आपका निरीक्षण, परीक्षण करना चाहिये कि वे

मानव-जीवन का उपयोग कैसे कर रहे हैं?हम दुनियाँ को धोखा दे सकते हैं। हमारी बाहरी स्थिति मायावी हो सकती है। परन्तु अपनी आंतरिक स्थिति से जितने हम स्वयं परिचित होते हैं, उतना शायद दूसरा न हों। हमें अपने जीवन की शांत चित्त से, पूर्वाग्रहों को छोड़, स्वयं समीक्षा करनी चाहिये ताकि हमें पता लग सके कि हम स्वयं के प्रति कितने ईमानदार हैं?

## ईमानदार कौन?

ईमानदार होने का तात्पर्य अपने जीवन के सही लक्ष्यों का निर्धारण कर अपने कर्तव्यों का सजगता पूर्वक पालन करते हुए लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सतत प्रयत्नशील रहना होता है। अतः हमारी प्रथम आवश्यकता है कि अपने आपको जानने की, समझने की। सम्यक् ज्ञान के अध्ययन, चिंतन तथा स्वाध्याय एवं धर्म गुरुओं के मार्गदर्शन से हम आत्मा एवं शरीर के भेद-विज्ञान को समझ सकते हैं। उसके बिना हमारी श्रद्धा स्थिर न रह सकेगी एवं हम अपने जीवन का सही लक्ष्य भी निर्धारण न कर सकेंगे। आत्मा की अमरता एवं उस पर कर्मों के प्रभाव पर विश्वास करने हेतु हमें निरन्तर चिंतन करना होगा कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? मैं मानव जीवन में क्यों आया? मुझे कहाँ जाना है? मैं इस अल्प मानव जीवन में अपने लक्ष्य को कैसे प्राप्त कर सकूँगा? क्या मैं अपनी क्षमताओं का लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में सदुपयोग कर रहा हूँ? क्या मेरा आचरण आत्मीय गुणों को प्रकट करने में सहायक है, कहीं लक्ष्य के विपरीत तो मेरा आचरण नहीं है?

## कर्मों का प्रभाव

क्या मुझे पुनर्जन्म, आत्मा एवं शरीर के भेद विज्ञान के बारे में श्रद्धा है? क्या प्राणिमात्र सुखी है? अगर नहीं तो क्यों? कोई स्वस्थ जीवन जीता है, तो कोई जन्म से ही अपंग अथवा रोग ग्रस्त क्यों रहता है? कोई दीर्घ आयु को प्राप्त करता है तो कोई अल्प आयु क्यों पाता है? किसी को बिना प्रयास बहुत कुछ मिल जाता है, परन्तु किसी को निरन्तर पुरुषार्थ करने के बावजूद भी कुछ नहीं मिलता। कोई अमीर के घर में जन्म लेकर सुख भोगता है और कोई गरीब के घर जन्म लेकर कष्टपूर्ण जीवनयापन करता है। कोई बाल्यकाल से ही प्रखर बुद्धिमान होता है, तो कोई सारे प्रयासों के बावजूद भी मूर्ख क्यों? कर्मों की विसंगतियों का प्रतिक्षण हम आसपास के वातावरण में सहज अनुभव कर सकते हैं जो इस धारणा को दृढ़ बनाते हैं कि हमारी उपलब्धियों के पीछे हमारे पूर्व जन्म के कर्म जिम्मेदार होते हैं तथा इस जन्म में हमारे द्वारा प्रत्यक्ष किये गये सुकृत एवं दुष्कृत्यों का फल समय परिपक्व होने पर हमें अवश्य मिलेगा। चोरी करने वाला तभी तक प्रसन्न रह सकता है जब तक कि वह पकड़ा नहीं जावे। यह आवश्यक नहीं कि चोरी के प्रथम प्रयास में ही उसे दंड मिल जावें। इसी प्रकार का चिंतन करने से हमारा बहुपक्षीय विकास होगा। हम अपने कर्तव्यों के पालन में सजग रहेंगे तथा हमारा आचरण नर से नारायण बनने में सहायक होगा।

## स्वयं से अपरिचित

परन्तु आज वास्तविकता क्या है? हम विज्ञान के भौतिक चमत्कारों के प्रभाव से अपने आपको नहीं पहचान पा रहे हैं। चन्द्रमा एवं अन्य ग्रहों की यात्राएँ करने वालों को अपने अन्दर झांकने का अवकाश शायद नहीं मिलता। विज्ञान सत्य को स्वीकारता है। एक बार सत्य प्रकट हो जाने के पश्चात् उसका पूर्वाग्रह समाप्त हो जाता है। बिजली का उपयोग हम प्रतिदिन लेते समय कभी नहीं सोचते कि इसका अविष्कार करने वाला कौन था? उस राष्ट्र, जाति एवं धर्म के हमारे सम्बन्ध कैसे हैं? वह कौन से देश का नागरिक था? कौनसे धर्म को मानने वाला था? हम सभी विज्ञान के आविष्कारों को बिना पूर्वाग्रह स्वीकारते हैं एवं अपने दैनिक जीवन में उपयोग लेते हैं। आश्चर्य की बात है बाह्य जगत् में इतनी व्यापक दृष्टि रखने वाला मानव, अन्तरजगत् के प्रति इतना उदासीन क्यों? सत्य को स्वीकारने वालों का दृष्टिकोण इस तथ्य के प्रति पूर्वाग्रहों से ग्रसित एवं उपेक्षित क्यों? हम प्रायः आध्यात्मिकता के बारे में न तो चिंतन, मनन एवं अध्ययन करते हैं एवं न सत्य को समझने का पूर्ण प्रयास करते हैं। फिर भी धर्म के बारे में ऐसे कुतर्कपूर्ण दृढ़ विचार प्रकट करते हैं जैसे हमने इसके बारे में गूढ़ अध्ययन कर लिया हो। हमारा प्रयास ठीक वैसा ही होता है जैसे किसी अशिक्षित मूर्ख द्वारा अनुभवी डाक्टरों की सभा को चिकित्सा विज्ञान के बारे में अधिकार पूर्वक सम्बोधित करना। जिसको विषय की जानकारी नहीं, उसके विचारों का क्या महत्त्व? हम भूल जाते हैं डाक्टरी, इंजीनियरिंग जैसे सामान्य विषय पर आंशिक योग्यता एवं अनुभव प्राप्त करने के लिये भी वर्षों तक अध्ययन, चिंतन एवं प्रयास करना पड़ता है, फिर भी उस विषय में पूर्ण रूप से दक्ष नहीं हो पाते। अतः अपने प्रति ईमानदार बनने वालों को अपनी सुषुप्त आत्म-शक्तियों को जगाने हेतु समुचित प्रयास करना होगा अन्यथा भविष्य में हमें पछताना पड़ेगा।

## आत्म निरीक्षण आवश्यक

आज दुराग्रहों एवं अज्ञानता के कारण चारों तरफ अनैतिकता, छल-कपट एवं भ्रष्टाचार का बोलबाला है। पद, प्रतिष्ठा एवं व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु हिंसा, असत्य, असन्तोष, घृणा, द्वेष एवं मायावृत्ति का आचरण करते तनिक भी संकोच नहीं हो रहा है। हमारी धारणा के अनुसार दुनियादारी के सारे कार्य पैसों से किये जा सकते हैं। अतः पद और पैसा कमाना ही हमारा मुख्य लक्ष्य बन जाता है। हम बुराई को बुरा मानने के लिये भी तैयार नहीं होते अपितु अनैतिक तरीको से क्षणिक सफलता प्राप्त कर फूले नहीं समाते। हम अपनी सफलताओं को पूर्व पुण्य का फल न मानकर एक मात्र अपने पुरुषार्थ एवं योग्यता का ही कारण मानते हैं। बाह्य उपलब्धियों से इतने अधिक प्रभावित हो जाते हैं कि अपने अन्दर झांक कर भी नहीं देख पाते। अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये थोड़ी बहुत सेवा, दान का कार्य कर इतने हर्षित एवं गर्व का अनुभव करते हैं मानों हमने जीवन

के बहुत बड़े लक्ष्य को प्राप्त कर लिया हो। हम प्रायः शायद ही इस बात की समीक्षा करते हैं कि हमारा अधिकांश समय कितना प्रमाद में जा रहा है। हमारी क्षमताओं के अनुरूप हम कितना प्रतिशत समय, श्रम और अपनी सम्पत्ति का उपयोग सद्कार्यों हेतु खर्च कर रहे हैं। क्या हमारा दान अपने दुष्कृत्यों पर आवरण डालने एवं प्रतिष्ठा बढ़ाने तथा व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये तो नहीं होता हैं? क्या ऐसा आचरण ही हमारी ईमानदारी के लक्षण हैं?

## सकारात्मक सोच आवश्यक

आत्मा की साधना करने वालों को आज आलसी, मूर्ख, निकम्मा, रूढ़िवादी, परम्परावादी समझने तथा स्वयं को सभ्य और बुद्धिमान, प्रगतिशील मानने की भूल हो रही है। क्षणिक भौतिक उपलब्धियों के कारण हमारा दृष्टिकोण बदल गया है। हमारी प्राथमिकताएँ एवं मापदंड बदल गये हैं। प्रतिक्षण हमारा प्रयास बाह्य सुख सुविधाओं के साधन उपलब्ध करने में ही लगा हुआ है। हम जो कुछ भी कर रहे हैं, उसके पीछे व्यक्तिगत लाभ, अहं - पोषण, प्रतिष्ठा एवं स्वार्थ जुड़ा हुआ है। अपनी सुख-सुविधाओं के लिये दूसरों का अनर्थ एवं सिद्धांतों के विरुद्ध आचरण करते तनिक भी संकोच नहीं हो रहा है। क्या यही हमारी ईमानदारी के लक्षण हैं? पैसों के बल पर हम धर्म गुरुओं को प्रसन्न रखने का अभिनय तो नहीं कर रहें हैं?

कहीं हमने स्वयं का अवमूल्यन तो नहीं कर दिया है? हमें हमारे चिंतन का दृष्टिकोण बदलना होगा एवं स्वयं के प्रति उपेक्षावृत्ति छोड़नी होगी। सुख एवं शांति का राज क्या है? इतनी भौतिक सुख सुविधाओं के बावजूद भी आज हम अशांत, भयभीत एवं तनावपूर्ण क्यों हैं? कहीं मूल में तो भूल नहीं हो रही हैं? अपनी भूल को सुधारना होगा एवं मानवीय गुणों को विकसित करने का प्रयास करना होगा। आध्यात्मिकता के प्रति अरुचि का प्रमुख कारण सही मार्गदर्शन एवं सकारात्मक सोच का अभाव ही होता है।

हम चाहते हुये भी स्वयं के प्रति ईमानदार क्यों नहीं हो रहे हैं? हमारी राह में कौनसी धारणाएँ, समस्याएँ एवं परिस्थितियाँ बाधक बन रही हैं, उनका चितन कर समाधान ढूंढना होगा। तभी हम दृढ़ मनोबल से अपने लक्ष्य की तरफ आगे बढ़ सकेंगे।

कभी-कभी जब अन्याय, दुराचार, अनैतिकता, हिंसा जैसे घृणित आचरण करने के बावजूद समाज एवं राष्ट्र में व्यक्ति को उच्च पदों पर प्रतिष्ठा मिलती है, धर्म गुरु तक उनकी खुशामद करते नहीं थकते। वहीं दूसरी तरफ न्याय एवं ईमानदारी पूर्वक आचरण कर अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने वालों पर आरोप लगाये जावें, व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग किया जावे, तिरस्कार एवं उपेक्षा की जावे, संस्थाओं में समुचित आदर सम्मान न दिया जावे तो जन साधारण का सच्चाई से भटकना स्वाभाविक है।

## कषाय मंदता ही साधना का मापदण्ड

प्रतिक्षण इस जीवन को कैसे जीया जावे, गौण हो रहा है। परलोक के प्रलोभन का श्रद्धालुओं को आश्वासन दिया जा रहा है। हम भूल जाते हैं जैसे-जैसे कषायों की मंदता होती जायेगी जीवन में शांति प्राप्त होती जायेगी। सच्ची साधना कषाय-विजय में है एवं उसका परिणाम शीघ्र मिलता है। परलोक तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। हमें अपने दृष्टिकोण को बदलना होगा। आज चिंतन एवं स्वविवेक के अभाव में ज्ञान एवं धार्मिक क्रियायें भार स्वरूप लग रही है एवं अहं पोषण का कारण बन रही है। साधक अथवा धार्मिक कहलाने वालों के मायावी आचरण से भ्रमित हो जन साधारण व्यक्ति आध्यात्मिकता से विमुख हो रहा है। साम्प्रदायिक राग के कारण कट्टरता, संकुचित दृष्टिकोण, जातिवाद, प्रान्तवाद, राष्ट्रवाद पर-दोष दर्शन की प्रवृत्ति बढ़ रही है। बढ़ता हुआ साम्प्रदायिक वैमनस्य, प्रलोभन एवं प्रभाव द्वारा धर्म परिवर्तन करवाना इसी के दुष्परिणाम हैं। यदि पथ प्रदर्शक स्वयं सही मार्ग से भटक जावें तो उन्हें अपने प्रति ईमानदार कैसे समझा जावे? धर्म एवं सम्प्रदायें हमें अपनी तरफ आकर्षित करने में व्यस्त हैं। आयोजनों एवं महोत्सवों में भीड़ इकट्ठी कर व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के साथ जन साधारण को अपना-अपना प्रभाव बतलाकर गुमराह किया जा रहा है। कहीं कहीं तो भक्त एवं भगवान के बीच बहुत बड़ी दीवार है। भक्त भक्त ही रहता है। भगवान् बन ही नहीं सकता। जिसने उसको भगवान के रूप में स्वीकारा उसके सारे करणीय अथवा अकरणीय कार्य एवं आचरण अनुमोदनीय हो जाते हैं।

बुराई बुराई ही है। अपने आराध्य एवं प्रेरणा स्रोतों के हर आचरण को अच्छा बताकर भक्तों द्वारा अंधा:नुकरण कहाँ तक उचित होता है ?आज के तर्कशील मानव के गले में ये बातें नहीं उतर रही है। उसका दृढ़ विश्वास है कि डॉक्टर अथवा दवाई की माला फेरने, तारीफ करने मात्र से रोग दूर नहीं हो सकता। रोग को मिटाने के लिये डॉक्टरों की सलाह से दवाई का सेवन करना होगा। इसी प्रकार भगवान की माला फेरने एवं उनके सिद्धान्तों को अच्छा बताने से हमारा कल्याण नहीं हो सकता। हमारा भला तो सिद्धान्तों का सम्यक रूप से आचरण करने से होगा। इस प्रकार जन साधारण आज के वातावरण से भ्रमित हो सच्चाई के मार्ग से हट रहा है।

## आधुनिक वातावरण एवं व्यक्तिगत समस्याएँ सही सोच में बाधक

हमें अपने लक्ष्य से भटकने में सबसे अधिक भूमिका तो जड़ विज्ञान का विज्ञापन निभा रहा है। उसकी लगातार सफलताओं के अहं ने मानव को पागल बना दिया है। भौतिक उपकरणों का उपयोग सभी समान रूप से कर सकते हैं। चाहे पंखा हो या रेल, टी.वी. हो रेडियों। उपकरण सामने वालों के पाप एवं पुण्यों के हिसाब से प्रभाव नहीं दिखाता। दूसरी बात अनुकूलता का मार्ग सबको प्रिय लगता है। बाह्य दृष्टिकोण के कारण मानव का चिंतन वर्तमान सुख-दु:ख तक ही केन्द्रित हो रहा

हैं एवं उसका सारा प्रयास वर्तमान तक ही सीमित हो गया है। चन्द व्यक्ति अपने पेट की समस्याओं, पारिवारिक तथा सामाजिक जिम्मेदारियों से इतने अधिक दबे रहते हैं कि उन्हें आत्म-चिंतन का अवकाश ही नहीं मिलता, तो कुछ व्यक्ति स्वास्थ्य की अनुकूलता न होने से इस महत्त्वपूर्ण चिंतन से वंचित रह आत्मोत्थान हेतु पुरुषार्थ नहीं कर पाते। वास्तविकता तो यह है कि हमने आत्मोत्थान को जीवन में तनिक भी महत्त्व नहीं दिया। अतः बाह्य परिस्थितियों, वातावरणों एवं व्यक्तिगत कठिनाइयों का बहाना ढूंढते हैं। अगर हम सत्य को समझ जावें, उसके प्रति रुचि प्रकट हो जावें तो ये सारी बाधायें हटते तनिक भी देर नहीं लगती।

## हमारी प्राथमिकताएँ सही हों

चंद व्यक्ति अपने परिवार, सम्प्रदाय, समाज अथवा राष्ट्र की सेवा में से किसी एक या एक से अधिक समस्याओं में पूर्ण रूप से समर्पित रहते हैं, तो कुछ व्यक्ति मानव सेवा अथवा पशुओं की सेवा को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाते हैं। उसके लिये सर्वस्व अर्पण करके भी अपने कर्तव्यों को निभाते हैं तथा उसके लिये अपने समय, श्रम एवं साधनों का उपयोग करना ही मानव जीवन की सार्थकता समझते हैं। इस जीवन में उससे भी अधिक आवश्यक आत्मोन्नति के सम्बन्ध में वे पूर्ण रूप से अनभिज्ञ रहते हैं। वे जीवन के एक पक्ष में तो काफी सफल होकर प्रतिष्ठित होते हैं, आदर एवं प्रतिष्ठा पाते हैं, परन्तु जीवन के दूसरे महत्त्वपूर्ण पहलुओं के प्रति पूर्ण रूपेण उपेक्षित होने के कारण अपने जीवन का सही मूल्यांकन नहीं कर पाते एवं सही लक्ष्य की प्राप्ति में असफल हो जाते हैं। वे इस बात का चिंतन तक नहीं करते कि अमूल्य मानव जीवन से जो कुछ सद्कार्य वे कर रहे हैं उससे भी अधिक आवश्यक उपयोगी कुछ तत्त्व हैं, जिन्हें मानव जीवन में ही प्राप्त किया जा सकता है। सही मार्गदर्शन के अभाव में उनका चिंतन एवं आचरण सही दिशा में होने के बावजूद सीमित होता है। ऐसे व्यक्तियों को चिंतन करना होगा कि महावीर, बुद्ध एवं अन्य तीर्थंकरों भगवन्तों ने सभी अनुकूलताएँ होते हुये भी निवृत्ति का मार्ग क्यों अपनाया? गृहस्थ जीवन में रहकर वे दान एवं सेवा के कार्य अधिक कुशलता पूर्वक कर सकते थे। सेवाभावी समर्पित कार्यकर्ताओं को इस बात का चिंतन करना होगा कि सेवा के नाम पर जितना वे कर रहे हैं उसमें सन्तोष न करें। अपने कर्तव्यों के निर्वाह हेतु अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा बधाई के पात्र हैं, परन्तु अपने अन्य आत्मीय गुणों को विकसित करने हेतु भी उन्हें सजग और प्रयत्नशील रहना चाहिये।

## नैतिकता हेतु आचरण में सजगता एवं सम्यक् चिंतन सर्वाधिक आवश्यक

अन्त में सारे चिंतन का निष्कर्ष यही है कि हम जहाँ भी रहें, हमारा विवेक जागृत रहे, कर्तव्यों के प्रति हम उदासीन न बनें। अपने अमूल्य समय, श्रम एवं साधनों का उपयोग आलस्य एवं प्रमाद को कम कर आत्मोत्थान में लगावें। अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में समभाव से जीना सीखें। हम

विषय एवं कषायों को मंद करने में प्रयत्नशील रहें। जितने-जितने हमारे कदम इस दिशा में बढ़ेंगे, हम अपने जीवन का उत्थान कर पावेंगे एवं अपने लक्ष्य के नजदीक पहुँचते जावेंगे। ऐसा आचरण करने वाला ही स्वयं के प्रति ईमानदार कहलाने का अधिकारी हो सकता है। जितने जितने अंशों में आत्मीय गुणों का विकास होगा, हम उतने अंशों में ईमानदार कहलाने के योग्य होंगे। धर्म के संचालकों से अपेक्षा है कि वे अपने दायित्वों का ईमानदारी पूर्वक निर्वाह करते हुये हमारा सही मार्गदर्शन करें। साथ ही राष्ट्र के निर्माताओं से भी अपेक्षा है कि वे नैतिक मूल्यों की उपेक्षा न करें एवं चिरसंचित हमारी आध्यात्मिक धरोहर को अपने स्वार्थ के कारण बरबाद होने से बचावें। अपनी नीतियों में आध्यात्मिक मूल्यों को संरक्षण प्रदान करें।

जो स्वयं के प्रति ईमानदार नहीं, वह दूसरों के प्रति ईमानदार कैसे हो सकता है? ''आप सुधरे तो जग सुधरा करता'' एवं ''निज पर शासन फिर अनुशासन'' वाली लोकोक्तियाँ हमें स्वयं के प्रति ईमानदार बनने की निरन्तर प्रेरणा देती है। लक्ष्य हमारे सामने है, चलना तो स्वयं को ही पड़ेगा। हम स्वयं अपनी स्थिति का चिंतन करें कि ''हम कितने ईमानदार हैं?''

## धार्मिक आयोजन में अपव्यय अनुचित

धार्मिक आयोजनों का उद्देश्य शुभ कार्यों की अनुमोदना करना एवं धर्म-प्रभावना रहा है, जिससे जन-साधारण धार्मिक गतिविधियों की तरफ आकर्षित हो, अच्छे आदर्शों को अपने जीवन में अपनाने हेतु प्रेरित हो सके। प्रत्येक युग में ऐसे आयोजन होते रहे हैं एवं उनकी आवश्यकता रही है, जिसके फलस्वरूप हजारों नर-नारी, बाल-वृद्ध सद्मार्ग से जुड़े हैं। ऐसे सद्पुरुषों की गौरव गाथाओं से शास्त्र भरे पड़े हैं। इसलिए धर्म-प्रभावना के अन्य माध्यमों के साथ इनकी उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। भूतकाल में धर्म के नाम पर होने वाले किसी भी आयोजन के आयोजकों का आचरण प्रायः विवेकशील, यथार्थवादी होता था। अहं-तुष्टि से परे होता था। उनका एक मात्र उद्देश्य जन-जागृति एवं जन-चेतना जगाना होता था। परन्तु आज अधिकांश धार्मिक आयोजनों के पीछे अहं पोषण की भावना एवं विवेकशून्य दृष्टिकोण स्पष्ट प्रतीत होता है।

धर्म-प्रभावना के नाम पर होने वाले इन आयोजनों का रूप आज इतना विकृत हो चुका है कि कभी-कभी तो धर्महीनता एवं अपवाद का कारण बन जाता है। प्रत्येक आयोजन के पीछे कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य होते हैं, भले ही वे धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक अथवा राष्ट्रीय आयोजन ही क्यों न हों। इसी संदर्भ में आयोजकों को इस बात का चिन्तन करना चाहिए कि धार्मिक आयोजन क्यों आवश्यक है एवं उनका उद्देश्य क्या है? आयोजनों का स्वरूप एवं मापदण्ड क्या हो? आयोजनों में सादगी क्यों आवश्यक है? आडम्बरों, प्रदर्शनों एवं अपव्यय का कहीं दुष्प्रभाव तो नहीं पड़ रहा है?

क्या ये आयोजन लोक-व्यवहार, सामाजिक अपेक्षाओं एवं शास्त्रीय मर्यादाओं के अनुकूल हैं? इन आयोजनों में होने वाले खर्चों के मूलस्रोत कैसे हैं? आयोजकों का जीवन एवं आचरण कितना धार्मिक है? कहीं ये आयोजन व्यक्तिगत, परिवार, समाज, सम्प्रदाय विशेष अथवा धर्मगुरुओं का अहं पोषण तो नहीं कर रहे है, भले ही वे आयोजन प्रचार-प्रसार अथवा धर्म-प्रभावना के नाम पर चातुर्मास, प्रतिष्ठा, दीक्षा, तप महोत्सव, अन्य-विमोचन, जयन्ती अथवा पुण्यतिथि, अभिनन्दन, धार्मिक यात्राओं के रूप में आयोजित हो रहे हों? आज प्रायः धार्मिक आयोजनों में झूठी प्रतिष्ठा के कारण बाह्य प्रदर्शनों की होड़ ने धर्म पर पैसों को इतना हावी बना दिया है कि आचरण एवं साधना गौण होती जा रही है।

## जीवन के बदलते मापदण्ड कितने लाभप्रद?

अपने सन्तानों का सम्बन्ध करते समय अधिकांश व्यक्ति रूप, पद एवं पैसों को ही अधिक महत्त्व देते है एवं उसके मापदण्डों के अनुरूप यदि सम्बन्ध हो जाये तो अभिभावक अपने जीवन की बहुत बड़ी सफलता तथा बच्चों के सुखद जीवन की कल्पना साकार हुई समझ लेते है। उनका ध्यान सम्बन्धित पक्षों के आचार-विचार, रहन-सहन, खानपान, रूचि, संगति, दृष्टिकोण व अन्य आवश्यक मानवीय गुणों की तरफ प्रायः उपेक्षित होता जा रहा है। अधिकांश व्यक्ति तो सुसंस्कारों को तनिक भी महत्त्व नहीं देते। कुछ व्यक्ति योग्यताओं की व्याख्या अपने अनुरूप कर सन्तोष व्यक्त करते हैं।

सुखी जीवन के लिए पद एवं पैसों का सर्वाधिक महत्त्व होने के बावजूद सुसंस्कारों के अभाव में पारिवारिक जीवन सफल नहीं हो सकता। अतः सगाई सम्बन्ध करते समय अन्य बातों की तरफ भी हमें सजगता रखनी होगी और कभी-कभी संस्कारों के लिए अपने मापदण्ड एवं प्राथमिकताओं में तनिक परिवर्तन भी करना होगा। चयन करते समय मानवीय गुणों के प्रति जितनी सजगता रखी जाएगी उतना ही पारिवारिक जीवन सुखी, तनाव रहित एवं मन अपेक्षाओं के अनुकूल होगा। इसके विपरीत सुसंस्कारों की उपेक्षा के कारण हमारा निर्णय संकुचित, स्वार्थमय एवं एकपक्षीय होने से भविष्य में पश्चात्ताप का कारण भी बन सकता है। सभी पद व पैसे वालों का जीवन आनन्द से ओत-प्रोत हो ऐसी बात नहीं। इनसे जीवन का एक पक्ष प्रभावित हो सकता है, सभी पक्ष नहीं, जो वास्तविकता है।

पैसों से सुख की कल्पना की जा सकती है शान्ति की नहीं, अच्छे से अच्छे भोजन एवं आराम की सामग्री मिल सकती है, किन्तु भूख तथा नींद नहीं। झूठी वाहवाही मिल सकती है, परन्तु सच्ची

प्रतिष्ठा नहीं। पद प्राप्त हो सकता है परन्तु निष्ठा एवं योग्यता नहीं। सम्बन्ध अवश्य हो जाते हैं, परन्तु प्रेम एवं तनावमुक्त साथी मिलना आवश्यक नहीं है।

सुसंस्कारित परिवार में सदस्य विवेकशील, विवेकवान व अपने से बड़ों का आदर-सत्कार करने वाला होता है। परन्तु आज इस दृष्टि से हमारे परिवारों की स्थिति कैसी है, जो किसी से छिपी हुई नहीं है। अतिथियों का आदर तो एक भार बन गया है। हमारी संस्कृति में मेहमानों तथा माता-पिता को देवता के तुल्य माना जाता था, परन्तु आज क्या स्थिति है उससे कौन परिचित नहीं है? जीवन में सफलता के लिए मृदुभाषी व सन्तोषी होना आवश्यक है अन्यथा हम व्यर्थ तनावग्रस्त रहते हैं। परन्तु आज इस तथ्य के प्रति हम कितने सजग है, चिन्तन का विषय है?

परिवार में शान्ति के लिए व्यापक दृष्टिकोण, सबको निभाने एवं साथ लेकर चलने की भावना तथा स्वार्थ से हटकर आपसी सहयोग आवश्यक है। परन्तु आज इन बातों की उपेक्षा क्यों हो रही है। अधिकांश परिवारों में हो रहे बिखराव, विघटन, घुटन, तनाव, अशान्ति आदि के पीछे जिम्मेदार तत्त्व क्या हैं? लोक व्यवहार सांसारिक अनुशासन व हमारे संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्तों की परिपालना क्यों नहीं हो रही है, सेवा तथा परोपकार की भावनाएँ क्यों क्षीण होती जा रही है?

हमारा चिन्तन संकुचित एवं स्वार्थमय बनता जा रहा है। हम प्रायः परिवार, समाज एवं मानवजाति की अपेक्षाओं को अपने स्वतन्त्र सुखी जीवन में बाधक समझ स्वार्थपूर्ण दृष्टिकोण अपनाये हुए हैं। हम अपने कर्त्तव्यों एवं जिम्मेदारियों को भूल रहे हैं। अधिकांश परिवार अपने माता-पिता के साथ रहना तक पसन्द नहीं करते। माता-पिता की सेवा करने की बात सोचना तो दूर ही है। समाज में वृद्धों, रोगियों एवं असहायों की स्थिति दयनीय एवं चिन्तनीय होती जा रही है। प्रेम का झरना सूख रहा है। अभिभावकों के सुखद कल्पनाओं के महल ढह रहे है, आखिर क्यों?

अपने बच्चों को सुसंस्कारित होने पर सबसे अधिक हम अपना ही भला करते हैं और उनकी उपेक्षा कर अपने स्वयं के जीवन का मार्ग अप्रशस्त करते हैं। भौतिकता की आँधी में तत्कालीन लाभ के परिणामस्वरूप भविष्य में होने वाले दुष्परिणामों की खुले आम उपेक्षा हो रही है।

हमारा चिन्तन तथा दृष्टिकोण एक पक्षीय बनता जा रहा है एवं उसका लक्ष्य येनकेन प्रकारेण पद एवं पैसों को प्राप्त करना है। हमारा मनोबल, आत्मविश्वास इतना क्षीण हो गया है कि हम बुराई को बुरा कहने तक का भी साहस नहीं जुटा पा रहे हैं। जैसा चल रहा है चलने दो अथवा जो हो रहा है होने दो की वृत्ति से दुष्वृत्तियाँ व्यापक रूप से फैल रही है।

उपचार हेतु प्रत्यक्ष-परोक्ष हिंसा कर्जा चुकाने हेतु ऊँचे ब्याज पर कर्जा लेने के समान नासमझी है।

# सेवा में साध्य, साधन एवं सेवक की पवित्रता आवश्यक

## सेवा क्या है ?

किसी भी जीव के कष्टों को दूर कर सुविधाएँ अथवा शान्ति पहुँचाने में सहयोग देकर उसके विकास में सहायक बनना सेवा कहलाता है। अपने चिन्तन, अनुभवों, समय, श्रम, साधनों तथा ज्ञान आदि का परहित में उपयोग करना सेवा के व्यापक रूप होते हैं। फिर वे कार्य चाहे भूखे की भूख मिटाने, प्यासे को पानी पिलाने, अशिक्षितों को पढ़ने में सहयोग देने, बेरोजगारों को रोजगार दिलाने, रोगियों का उपचार करने, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आयोजनों का संचालन करने अथवा विवादों के सुलझाने, धार्मिक प्रचार करने, जन कल्याणकारी गतिविधियाँ चलाने अथवा कुरीतियाँ मिटाने आदि के ही क्यों न हों? सारे कार्य आज सेवा के क्षेत्र में समझे जाते हैं। किसी भी जीव के प्राणों की रक्षा करना, उसके सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र की अभिवृद्धि में सहयोग करना, कराना, करने वालों का अनुमोदन करना, निर्दोष रोगोपचार करना, सेवा के उत्कृष्ट रूप होते हैं। सेवा का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है, जिसको शब्दों में बांधना कठिन होता है।

सेवा भवसागर से पार लगाने का पुल है। सेवा सदाचार एवं स्वाध्याय का प्रायोगिक पक्ष है जो नर से नारायण बनने का सरल उपाय है। सेवा में ''सर्वजीवहिताय: सर्वजीवसुखाय:'' की भावना मुख्य होती है। सेवा एक साधना है जो पीड़ित को शांति पहुंचाती ही है, स्वयं को भी आत्म संतोष दिलाती है। नि:स्वार्थ भाव से, समर्पण पूर्वक आत्मोत्थान में सहयोग देने वाली, कषायों को कम करने वाली सच्ची सेवा से कर्मों की निर्जरा होती है, मानवीय गुणों का विकास होता है, तनाव घटता है, मैत्री बढ़ती है, तथा व्यक्ति में संवेदनशीलता जागृत होती हैं, करूणा पनपती है। सेवक को जितने-जितने अंशों में इन उपलब्धियों की प्राप्ति होती है, उतनी-उतनी सेवा भी उत्कृष्ट होती है।

## सेवा की प्राथमिकताएँ

सेवा में साधन (द्रव्य, वस्तुएँ आदि), साध्य (दु:खी, पीड़ित, अभावग्रस्त), सेवक (चिकित्सक, दानी, परोपकारी, सहयोगी) होते हैं। सेवा किसकी करें? कब करें? कैसे करें? क्यों करें? सेवा की प्राथमिकताएँ एवं मापदण्ड क्या हों? क्योंकि सेवा हेतु आवश्यक श्रम, समय एवं साधनों की प्रत्येक व्यक्ति के पास अलग-अलग सीमाएँ होती है। सीमित क्षमताओं का अधिकाधिक प्राथमिकताओं के आधार पर उपयोग कैसे हों, इस हेतु विवेकपूर्ण गहन चिन्तन अनिवार्य है। अपने अभिभावकों एवं गुरुजनों, जिन्होंने हमें जीवन जीने की कला सिखाई, योग्य बनाया, उनकी सेवा को प्राथमिकता देनी चाहिए। घर में माता-पिता अथवा अन्य परिजन तो तड़फता हो, भाई भूखा मरता हो, हम पर आश्रित परिजन परेशानी में हों और हम उसकी उपेक्षा कर समाज सेवा करें, लाखों का दान

कर वाहवाही लूटने में व्यस्त रहें तो हमारी बदनामी होती है। हमारा प्रथम प्रयास हमारे आसपास अथवा सम्पर्क में आने वालों की सेवा होनी चाहिये। उसके पश्चात् जो साधना के क्षेत्र में आगे बढ़ कर स्व-पर कल्याण में रत हैं उनकी सेवा को सर्वोच्य प्राथमिकता देनी चाहिये। जिनका जीवन सेवामय हो, जो कल्याणकारी प्रवृत्तियों में रचे पचे हों अथवा जो जीव अथवा प्राणी बेसहाय हों, उनकी सेवा को प्राथमिकता देनी चाहिये। यदि हमारी क्षमताएँ अधिकार क्षेत्र व्यापक हों तो प्राणी मात्र की सेवा में उसका उपयोग करना चाहिये। जो सेवा भौतिक समस्याओं का समाधान करती है, पारिवारिक, सामाजिक, व्यापारिक, राजनैतिक आयोजनों हेतु की जाती है,जिस सेवा से स्वार्थ और अहं पोषण होता है, उस सेवा से पापानुबंधी पुण्योपार्जन ही होता है। शुभ अघाति कर्मो का बंध होता है। परन्तु जिस सेवा से स्वयं या दूसरों के आत्मविकार दूर होते हैं, वहीं उत्कृष्ट सेवा होती है। पुण्यानुबंधी पुण्य का बंध होता है एवं घाति कर्मो का क्षय होता है।

## सेवक की योग्यता

सेवा में सेवक के तन और मन का समर्पण, वाणी की मधुरता एवं विनय भाव आवश्यक होता है। पर-पीड़ा की अनुभूति और सद्भावना सेवा के प्राण होते हैं। विनय एवं वाणी का संयम सेवा को चमकाते हैं। कर्कष एवं व्यंगात्मक वाणी से सेवा विकृत हो जाती है। पीड़ित के प्रति आदर भाव, उसके स्वाभिमान की रक्षा, उज्ज्वल, सुखद एवं सुसंस्कारित जीवन की मंगल भावना एवं प्रेरणा तथा सेवक के विवेकपूर्ण आचरण सेवा के लक्ष्यों को शीघ्र प्राप्त करने में अत्यधिक सहायक होते हैं। रोग के समय व्यक्ति का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, रोगी का धैर्य, कमजोर हो जाता है। अतः सेवक को सदैव शांत, प्रसन्न, सहज, सरल और विनम्र होना चाहिए। कोई भी प्रतिकूल परिस्थिति, संयोग, सम्पर्क, कथन, सेवक को तनावग्रस्त न कर सके, तब ही सच्ची सेवा होती है। अपेक्षाएँ स्वार्थ का प्रतीक होती हैं। उनके लिए की जाने वाली सेवा, सेवा नहीं सौदा है। सेवा का व्यवसायीकरण है, जो कदापि उचित नहीं है। सेवा में तो देना ही प्रमुख होता है। यश प्राप्ति के लिये की गयी सेवा भी, सेवा का अवमूल्यन करती है।

मात्र अल्प समय के लिये किसी के कष्टों को मिटाने में सहयोग सेवा का लघु रूप होता है। सच्चे सेवक का प्रयास तो दुःख के मूल कारणों का सदैव दूर करने का होता है। यदि सेवक का आचरण इन मापदण्डों के विपरीत हों अर्थात् एक का कष्ट दूर करने के लिये जो साधन कार्य में लिए जाते हों, उसके निर्माण, परीक्षण आदि अन्य जीवों के प्रति निर्दयता, क्रूरता होती हो ऐसी सेवा को यथासंभव प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। सेवा के साथ स्वार्थ, मायावृत्ति अथवा दिखावा, अहंपोषण की भावना पुष्ट होती हों, वाणी का विवेक नहीं हों और पीड़ित के प्रति व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग करता हों, बात-बात में एहसानों की अभिव्यक्ति झलकती हों, जिससे सामने वालों के स्वाभिमान को चोट पहुंचे तो ऐसी दुष्प्रवृत्तियाँ सेवा रूपी अमृत को जहर बनाने के तुल्य होती है।

प्रत्येक सेवा भावी व्यक्ति को यथासंभव ऐसी प्रवृत्तियों से बचना चाहिये। उदाहरण के लिए यदि आपके घर कोई मेहमान आये और आप उसका बहुत आदर सत्कार एवं सेवा करें, अच्छे से अच्छा भोजन खिलावें, उसकी सुख सुविधाओं का पूरा ध्यान रखें ताकि किसी भी प्रकार का कष्ट और परेशानी न हों, परन्तु घर से विदा होते समय मात्र इतना कह कर देखे, आज तक आपको जिन्दगी में कभी ऐसा आदर-सत्कार करने वाला अन्य दूसरा व्यक्ति मिला? क्या प्रतिक्रिया होगी ऐसे आदर सत्कार की? सेवा मात्र नारों का विषय नहीं, समर्पण एवं आचरण का विषय है। ''सबकी सेवा सबको प्यार'' का संदेश देने वालों को अपनी सेवाओं का मूल्यांकन इन मापदण्डों के आधार पर करना चाहिये।

## स्वयंसेवी संगठनों में सेवा का स्वरूप

आजकल हजारों स्वयंसेवी संगठन एवं विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ सेवा के उद्देश्य से गठित होते हैं तथा उनके द्वारा किये गये सेवा कार्यों को बहुत अधिक प्रचारित किया जाता है। ऐसी अधिकांश संस्थाओं में सेवा के नाम पर आयोजित होने वाले कार्यक्रमों का उद्देश्य सेवा का विज्ञापन, प्रदर्शन, व्यक्तिगत अहंपोषण, अधिक हो गया है, इससे सस्ती लोकप्रियता प्राप्त कर स्वार्थ-सिद्धि होती रहती है। मानो वे स्वयं की सेवा कर स्वयंसेवी संस्थाओं के नाम की सार्थकता प्रकट कर रहे हैं। उनके अधिवेशनों, शपथ समारोह, मनोरंजन कार्यक्रमों के आयोजनों के पीछे कौनसी सेवा की भावना है, जो जनसाधारण के लिये चिन्तन का विषय है?

## प्रभावशाली व्यक्ति और सेवा

सेवा की प्रेरणा में जब कोई प्रभावशाली राजनेता, उच्च पदाधिकारी अथवा लब्धिधारी संत आगे आ जाते हैं तो उनको खुश करने के लिये, उनसे अपने स्वार्थों की पूर्ति कराने के उद्देश्य से, उनकी प्रेरणा से लोग सेवा हेतु आगे आते समय, श्रम और साधनों को बांटते तनिक भी संकोच नहीं करते। वे सेवा के उस क्षेत्र की उपयोगिता, प्राथमिकता व महत्त्व के बारे में चिन्तन तक नहीं करते हैं। परन्तु ऐसे सेवाभावी व्यक्तियों के पास यदि कोई साधारण व्यक्ति दु:ख दर्द की फरियाद लेकर पहुँच जाता है, उस समय अनेकों प्रसंग ऐसे देखे गये हैं कि कभी-कभी सहयोग करना तो दूर, दु:खियों की व्यथा को भी शांति से सुनने का उनके पास समय नहीं होता। सेवा जैसे पावन क्षेत्र का उपयोग जब व्यक्ति अपनी स्वार्थ सिद्धि कि लिये करने लगे तो ऐसी सेवा और सेवक दोनों बदनाम होते हैं। जब तक प्रभावशाली व्यक्तियों की प्रेरणा मिलती है, स्वार्थ सिद्धि होती है उन संस्थाओं में सेवा के कार्य तीव्र गति से चलते हैं, परन्तु जैसे ही उनका सम्पर्क समाप्त हुआ, सेवा के कार्यक्रमों में न केवल शिथिलता आ जाती है अपितु प्राय: कभी-कभी संस्थाएं बन्द भी हो जाती हैं।

## जीवन-उत्थानः सेवा का उत्कृष्ट रूप

जो सेवा मानवीय गुणों का विकास करती है, व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक शक्तियों को विकसित कर आध्यात्मिक विकास में सहयोग कर नर से नारायण बनाती है वही उत्कृष्ट सेवा होती है। जिस व्यक्ति के कष्टों को दूर करने में सहयोग किया जाता है वह व्यक्ति सेवा करने वालों का ऋणी होता है। सेवक को आदर की दृष्टि से देखता है एवं उसके सुझावों, आदेशों, निर्देशों, प्रेरणाओं का यथासंभव पालन करने का प्रयास उसका कर्तव्य बनता है। अतः सेवा के साथ में पीड़ित के मानवीय गुणों के विकास का लक्ष्य होना चाहिये। उसको व्यसन मुक्ति, सात्विक खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, स्वाध्याय-चिन्तन का महत्त्व बतलाकर जीवन में उन्हें अपनाने का संकल्प दिलाना चाहिये। दुःख देने से दुःख मिलता हैं। इस रूप में जिसकी सेवा की जावे यदि वह व्यक्ति व्यसन सेवन, मदिरापान एवं मांसाहार का प्रयोग करता हो तो उसको त्याग करने हेतु समझना चाहिये, सेवा करने वाले का यह प्रथम संकल्प होना चाहिये। जिस प्रकार उपचार के साथ यदि कोई डॉक्टर परहेज पर जोर दें तो यह शर्त नहीं इसके पीछे रोगी को शीघ्र स्वस्थ बनाने का हित-निहित होता है। उसी प्रकार सेवा के साथ दुःख के मूल कारणों से दुःखी को छुटकारा दिलाना सेवा को प्रभावशाली बनाता है। यह सेवा के साथ भेदभाव नहीं, अपितु दुःख दूर करने की प्रथम आवश्यकता पर बल है। जैसे यदि रोगी डॉक्टर द्वारा बताये गये परहेज का पालन नहीं करें, उसकी उपेक्षा करें तो कैसे रोग मुक्त होगा? उसी प्रकार मांसाहार, दुर्व्यसनों को बुरा न मानने वाले व्यक्ति, सेवक की सेवाओं से वंचित रहें तो इसमें किसका दोष? यदि पीड़ित अपने आचरण में सुधार न करें तो मानवता के नाम पर दूसरों के दुःखों को प्रोत्साहन देने वालों की सेवा को प्राथमिकता कदापि उचित नहीं। भगवान महावीर से जब पूछा गया, व्यक्ति सोता हुआ अच्छा अथवा जागृत अच्छा? उन्होंने कहा जिनका जीवन स्वपर कल्याण में लगा हुआ है उनका जागृत रहना अच्छा है, परन्तु जो दूसरे को दुःखी बनाते हैं उनका सोते रहना ही अच्छा हैं। जीवन सुधार के उद्देश्य के बिना सेवा करने वालों को इसके गूढ़ रहस्य को समझना चाहिए। ऐसी सेवा से दुःखी का दुःख दूर नहीं होता है। मात्र सस्ती लोकप्रियता, वाहवाही तथा अहंपोषण होता है। सेवक का कार्य सेवक तैयार करने का होना चाहिए। जिससे भविष्य में वह जन-जन का हितैषी बन सकें। सेवा के साथ जीवन सुधार की शर्त सेवा के साथ सौदा नहीं, अपितु सेवा को प्रभावशाली बनाती है, जैसे सोने की अंगूठी में हीरे का नगीना जड़ने से उसका मूल्य अनेक गुणा बढ़ जाता है।

इन मापदण्डों के अभाव में आज सैकड़ों सामाजिक एवं स्वयंसेवी संगठनों के माध्यम से की गयी सेवा अपेक्षित लाभकारी सिद्ध नहीं हो पा रही है। शिक्षा के क्षेत्र में डॉक्टर, इंजीनियर, चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट, प्रशासनिक अधिकारी आदि उच्चशिक्षा हेतु खूब सहयोग दिया जाता है, परन्तु उनके साथ सदाचरण को गौण रखने से उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् सहायता प्राप्त करने वाले

अनेकों विद्यार्थी स्वार्थी एवं अनैतिक बन अपने लाभ का ही ध्यान रखते हैं। उनमें सुसंस्कारों के अभाव में अनेक दुर्व्यसन पनप जाते हैं। कभी-कभी उनमें कुछ विद्यार्थी परिवार, समाज और राष्ट्र के निर्माण के स्थान पर विध्वंस में सहायक बन जाते हैं। इसे दूर करने हेतु सेवा के क्षेत्र में कार्यरत सभी संगठनों को पूर्वाग्रहों से अलग होकर सेवा के साथ जीवन-निर्माण हेतु आवश्यक नियमों व शर्तों का पालन करना आवश्यक होना चाहिये।

## प्राणों की रक्षा करना सर्वोत्तम सेवा होती है

पहला सुख निरोगी काया। रोगी को रोगों से राहत दिलाना हमारा प्रथम कर्तव्य होता है। रोगों से राहत मिलने के पश्चात् ही उपदेश का प्रभाव पड़ता है। रोगी को रोग मिटाने हेतु इस बात का विवेक रखना चाहिये कि जो दवा और सामग्री काम में लायी जाये वह यथा संभव पवित्र हों। उसके पीछे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अन्य जीवों की हिंसा, प्रताड़ना अथवा क्रूरता न हों। चिकित्सा में हिंसा अपवाद रूप में, जहां कोई अन्य विकल्प न हों, मजबूरी में ही मान्य हो सकती है, परन्तु उसका भी प्रायश्चित द्वारा शुद्धिकरण अनिवार्य होता है। तुलसीदास जी ने स्पष्ट रूप से कहा है:-

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोडिये, जब तक घट में प्राण।।

अहिंसा परमो धर्म: हमारी जीवन शैली हैं। जैसा करेंगे वैसा फल मिलेगा, यह सनातन सत्य है। सेवा एक धर्म है और जहां दया नहीं, करूणा नहीं संवेदना नहीं वहां धर्म कैसा? हिंसा-अहिंसा के विवेक से शून्य सेवा तो व्यक्ति में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अहंपोषण को ही प्रोत्साहन देगी, जो पाप का ही रूप होती है। अत: ऐसी सेवा नर को नारायण बनाने के स्थान पर अधोगति में भी ले जा सकती है। सेवा की प्रथम शर्त सेवा में अहिंसा का पालन है। उदाहरण के लिये आपके पास कोई भूखा व्यक्ति भूख मिटाने हेतु याचना करे तो मानवता का दृष्टिकोण रखने वाला यथासंभव उस व्यक्ति की भूख मिटाने का प्रयास करेगा। परन्तु भूखा व्यक्ति अपनी क्षुधा मिटाने के लिये मदिरा या मांसाहार का आग्रह करें तो उस समय एक अहिंसक का क्या कर्तव्य होगा? हिंसा और सेवा में वह किसको प्राथमिकता देगा? विवेकशील व्यक्ति सेवा के नाम पर भूख मिटाने के लिये कभी भी मांसाहार कराना उचित नहीं समझेंगा। मांसाहार जीव हत्या से प्राप्त होता है, इस बात की उसको जानकारी है। एक का दु:ख दूर करने के लिये पंचेन्द्रिय जीवों की हत्या कदापि न्याय संगत नहीं। सेवा के पालन में समुचित सिद्धान्तों का पालन करना बुद्धिमत्ता है।

रोग निवारण में मानव-सेवा के नाम पर जो भी साधन या सामग्री कार्य में ली जावे उसके निर्माण परीक्षण में जीव-जन्तुओं पर अनावश्यक क्रूरता न की जावे। स्वार्थ के लिए हिंसा और क्रूरता को प्रोत्साहन देना कदापि उचित नहीं। फिर भले ही हिंसा किसी भी रूप में क्यों न हों, किसी के लिये भी, धर्म के नाम पर हो अथवा रोगी उपचार सेवा के नाम पर, हमारा प्रथम प्रयास उससे यथा संभव बचने का होना चाहिये।

# चांदी और सोने में उलझा.... ।

चांदी और सोने में उलझा, प्रभु का रास्ता छूट गया।
माया के मृगजाल में फंसकर प्रभु से रिश्ता टूट गया।।
चांदी और सोने..... ।

चंद रुपये की मौज शोक में, तूं जीवन सुख ढूंढ रहा,
स्वजन कुटुम्ब परिवार, पति-पत्नी में तू बन मूढ रहा,
काम कामना, माया तृष्णा, वैतरणी में डूब रहा,
पूर्व पुण्य खजाना तेरा, देख अरे नर खूट गया।।
माया के मृगजाल..... ।

दया गरीबों पर न आयी, ना भाई पर प्रीत धरी,
नहीं सुनीं तूने दुर्बल की, करुण कहानी पीड़ भरी,
दान दिया ना खुले हाथों, ना भूखों की भूख हरी,
अब पछताता मरण खाट पर, जब तेरा सब लूट गया।।
माया के मृगजाल..... ।

राह में राही तेरी मिल्कत, मिल अपने सब लूट रहें,
मन की मन में रह गई पगले, अब क्यों माथा कूट रहें,
यह श्वासों के दुर्बल धागे, अब टूटें कब टूट रहे,
घड़ा पाप का भरा जीवन भर, आज अंत में फूट गया।।
माया के मृगजाल..... ।

तेरी करनी देख के तेरा, मालिक तुझ से रूठ गया,
हाथ बांध कर आया था पर, अब खाली कर मूंठ गया,
हाय-हाय करता जीवन, बगिया का माली उठ गया,
मरण खाट पर खड़े स्नेही, भूल कलेजा चूट गया।।
माया के मृगजाल..... ।

नादानी मत कर रे मूरख, धन वैभव नहीं तेरा है,
चार दिनों की चकाचौंध, आखिर जंगल में डेरा है,
दान, शील, तप, भाव, भावना, स्वर्णिम ज्ञान उजाला है,
वही विचक्षण जो जीवन में, पी अमृत की घूट रहा।।
माया के मृगजाल..... ।

# -: चोरडिया प्रकाशन की पुस्तकें :-

( लेखक - डॉ. चंचलमल चोरडिया )

| क्र.सं. | विवरण | सहयोग राशि |
|---|---|---|
| 1. | आरोग्य आपका | 260 रु. |
| 2. | स्वस्थ रहें या रोगी फैसला आपका ? | 40 रु. |
| 3. | शरीर स्वयं का चिकित्सक | 15 रु. |
| 4. | जीवन है अनमोल ( भजन संकलन ) | 20 रु. |
| 5. | मांसाहार कितना उचित ? | 10 रु. |
| 6. | स्वास्थ्य हेतु सम्यक् चिन्तन आवश्यक। | 10 रु. |
| 7. | नाड़ी तंत्र एवं मांसपेशियों का उपचार | 15 रु. |
| 8. | **Resetting of Disturbed LEG, SPINE & NAVEL** | 21 रु. |
| 9. | **UROPATHY** | 15 रु. |
| 10. | स्वास्थ्य का दर्पण आरोग्य आपका | 15 रु. |
| 11. | प्रभावशाली उपचार हेतु सही निदान आवश्यक | 10 रु. |
| 12. | सुखी जीवन का मूलाधार अहिंसक जीवन शैली | 15 रु. |
| 13. | निर्दोष, स्वास्थ्यवर्धक जीवन शैली | 11 रु. |
| 14. | प्रभावशाली अहिंसक चिकित्सा पद्धतियाँ ( प्रथम संस्करण ) | 40 रु. |
| 15. | आपका आरोग्य आपके पास | 25 रु. |
| 16. | निर्दोष श्रमणोपचार | 15 रु. |
| 17. | स्वास्थ्य का अमूल्य खजाना : मानव मूत्र | 20 रु. |
| 18. | भोजन हेतु पशु हिंसा अनुचित | 10 रु. |
| 19. | क्या हम स्वस्थ रहना चाहते हैं ? | 15 रु. |
| 20. | प्रभावशाली स्वावलम्बी लीवर शुद्धिकरण चिकित्सा | 10 रु. |
| 21. | प्रभावशाली अहिंसक चिकित्सा पद्धतियाँ ( संशोधित संस्करण ) | 45 रु. |
| 22. | पीने योग्य शक्तिवर्धक पानी | 10 रु. |
| 23. | स्वास्थ्यवर्धक भोजन कैसा हो ? | 20 रु. |
| 24. | स्वास्थ्य मंत्रालय स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों के प्रति कितना सजग ? | 20 रु. |
| 25. | अहिंसक चिकित्सा पद्धतियों पर चिन्तन आवश्यक | 20 रु. |
| 26. | क्या अहिंसक जीवन जीना संभव है ? | 15 रु. |
| 27. | स्वास्थ्यवर्धक भोजन कैसा हो ? | 20 रु. |
| 28. | बिना दवा मधुमेह ( डायबिटीज ) का प्रभावशाली उपचार ( द्वितीय सं. ) | 25 रु. |
| 29. | साधना हेतु सजगता आवश्यक | 20 रु. |
| 30. | क्या हम अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग है ? | 20 रु. |

( लेखिका - श्रीमती रतन चोरडिया )

| | | |
|---|---|---|
| 31. | आत्म-वैभव | 25 रु. |
| 32. | आपका उपचार आपके घर | 25 रु. |
| 33. | मृत्यु एक महोत्सव | 15 रु. |
| 34. | दो कदम लक्ष्य की ओर | 11 रु. |
| 35. | मैं कौन हूँ ? | 50 रु. |

( नोट : पोस्टेज एवं डिलेवरी शुल्क अतिरिक्त )